International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 1, January 2021 |

कालिदास के काव्यों में प्रकृति चित्रण

डॉ. के. आर. महिया

सहायक आचार्य, संस्कृत, राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

सार

कालिदास मुख्यत प्रकृति प्रेम के प्रमुख कवि माने जाते हैं। कालिदास प्रकृति की गोद में ही पले बढे है।। इसी कारण जब हम उनकी कृतियों को देखते हैं तो पाते हैं कि उनके कृति पात्र भी प्रकृति में ही अपना जीवन जीते हैं। यह सर्वथा स्वाभाविक और सत्य है कि मानव जीवन और प्रकृति का मनुष्य के जन्म से ही एक अटूट संबंध होता है। प्रकृति के बिना मानव जीवन मृत है। कालिदास भी प्रकृति से जुड़े ही मनुष्य थे। इसी कारण उनकी कृतियों में भी हमें प्रकृति चित्रण देखने को मिलता है।।

परिचय

कालिदास की प्रथम रचना कृति ऋतुसंहार को माना जाता है। कभी वे नवयुग में प्रकृति का चित्रण करते हैं तो कभी सौंदर्य रूप पर हाव-भाव में प्रकृति को चित्रित करते हैं।[7]। मेघदूत में प्रकृति और मानव जीवन में एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। कुमारसंभवम् में उन्होंने हिमालय की अभूतपूर्व सुंदरता का चित्रण करते हुए शिव और पार्वती का प्राकृतिक वर्णन किया है। रघुवंशम में कवि ने मानव जीवन और प्रकृति को एक सूत्र में भी पिरोया है। अभिज्ञान शाकुंतलम् me उन्होंने मानव जीवन और प्रकृति के मधुर संबंधों को हमारे सामने रखा है। प्रकृति का सहज एवं में स्वाभाविक यथार्थ चित्रण ही आलंबन रूप है। हम पाते हैं कि संस्कृत के लगभग सभी कवियों ने आलंबन रूप में अपने काव्यों को लिखा है। कालिदास की कृतियों में भी हमें इस प्रकार का चित्रण देखने को मिलता है। हम देखते हैं कि वे यथार्थ चित्रण से प्रकृति को एक स्वाभाविक रूप प्रदान करते हैं। उनकी अधिकांश लक्षणों में हमें प्रकृति का आलंबन रूप ही देखने को मिलता है।। कालिदास की रचनाओं में हम देखते हैं कि मानवीय भावना भी सुख और दुख का अनुभव करती हैं। अभिज्ञान शाकुंतलम् में हम देखते हैं कि जब शकुंतला कण्व ऋषि के आश्रम से अपनी विदाई लेती है तो मानो संपूर्ण प्रकृति ही सजीव हो उठती हैं। हिरण का बच्चा शकुंतला को जाने से रोकता। शकुंतला जब जाने की आज्ञा मांगती है तो कोयल कूकती है, मानो उन्होंने स्वीकृति दे दी हो। माधुरी लता को शकुंतला की बहन बताया गया है शकुंतला जाते-जाते माधुरी लता को गले लगाती है। वही रघुवंशम है हम देखते हैं कि जब राजा दिलीप नंदिनी गाय की सेवा के लिए जाते हैं तो मानो वृक्ष राजा की जय करते हैं। हवा मानों बांसुरी बजाती है।मेघदूतम में हम पाते हैं कि मैं मेघ को एक सजीव प्राणी के रूप में मानवीकृत किया गया है।। मेघ को एक दूध के रूप में यक्ष अपनी प्रेमिका के पास भेजता है। इस प्रकार कालिदास ने प्रकृति का मानवीकरण एक अद्‌भुत रूप में किया है।

विचार-विमर्श

कभी-कभी हम देखते हैं कि प्रकृति भी संवेदनात्मक हो जाती है। प्रकृति की मानव की भांति सुख दुख व्यक्त करती है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें अभिज्ञान शकुंतलम में देखने को मिलता है। जब शकुंतला की विदाई होती है तो हम देखते हैं कि लताएं, वृक्ष, पादप सब उदास हैं, वे शकुंतला के विदेश से दुखी हैं वे नहीं चाहते कि शकुंतला जाए। हम देखते हैं कि जब भी कोई कवि किसी प्रकार का चित्रण करना चाहता है तो वह उपमा के लिए प्रकृति को ही प्रस्तुत करता है, ताकि व्यक्ती या अवस्था या वस्तु विषय को आसानी से समझा जा सके। कालिदास तो वैसे भी उपमा के लिए प्रसिद्ध है। शकुंतला नाटक में हम देखते हैं [8] कि शकुंतला के होठों के लिए पल्लव की लालिमा तथा कुमारसंभवम् में पार्वती की मुस्कान की सुंदरता प्रकृति में ही कवि को दिखाई देती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कालिदास प्रकृति के कितने प्रेमी थे। उनकी उपमा और प्रकृति के लगाओ ने उनके काव्य को एक अलग ही रूप प्रदान किया। हम देखते हैं कि जैसे-जैसे ऋतुएं बदलती है,, हम देखते हैं कि नवयुवक और नवीन युवतियों के मन भी उसी प्रकार बदल जाते हैं। ऋतुसंहार में छह ऋतु का वर्णन हमें उद्दीपन के रूप में ही देखने को मिलता है। हम देखते हैं कि प्रत्येक ऋतु अपनी सुंदरता से प्रेमियों के हृदय को प्रेम के लिए उद्दीप्त करती है। हम कह सकते हैं कि कालिदास प्रकृति के पुजारी थे। अपने कार्यों में प्रकृति को हमेशा से ही स्थान दिया है। उन्होंने लगभग अपनी सभी रचनाओं में प्रकृति के सौंदर्य सिंगार रूप को उभारा है। जिस प्रकार से उन्होंने प्रकृति के सौंदर्य रूप को अपने काव्यों में स्थान दिया है, इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि शायद हुए प्रकृति के भीषण

हुए भयावह रूप से अनजान थे। लेकिन फिर भी उनके प्रकृति प्रेम से हम पाते हैं कि उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रकृति व मानव जीवन को लगभग एक समान ही कर दिया था।

परिणाम

आज के आधुनिक एवं भौतिकवादी युग में लोग प्रकृति को भूलते जा रहे हैं। प्रकृति मानव की सहचरी एवं साक्षात परमात्मा का रूप है और इसके साथ तादात्म्य में रखने से ही परमानंद की प्राप्ति होती है; क्योंकि मनुष्य जब सभी प्रकार के कृत्रिम साधनों से उब जाता है, नीरज हो जाता है तो उसको वास्तविक सुख प्रकृति के गोद में ही प्राप्त होता है। विश्व कवि कालिदास ने अपने काव्य से प्रकृति-चित्रण के दृश्यावली को सजीव, साक्षात रूप में हमारी आंखों के सामने चित्रित करते हैं।

महाकवि के साथ रचनाएं विश्व प्रसिद्ध है-

गीतिकाव्य एवं खंडकाव्य-

1- ऋतूसंघाराम 2- मेघदूतम

महाकाव्य-

3- कुमारसंभवम् 4- रघुवंशम्

नाटक-

5- मालविकाग्निमित्र 6- विक्रमोर्वशीयम् 7- अभिज्ञानशाकुंतलम

इन सभी गीतिकाव्यों तथा नाटकों में महाकवि कालिदास ने प्रकृति-चित्रण को तथा प्रकृति चित्रण में वर्ण (रंग)- संयोजन की छटा, रसप्रभाव-प्रवणता और मौलिक उद्दभावानाओ को कोमलकांत पदावली में चित्रित किया है कि इस को हृदयंगम करते ही दुख-दैन्य भरे पापतापमय संसार का साथ छूट जाता है।

प्रकृति-सम्राट महाकवि कालिदास ने प्राकृतिक दृश्यों की मंदाकिनी को भारतवर्ष के काव्य-भूतल पर अविछिन्न काव्यधारा के रूप में प्रवाहमान किया है। इस काव्यधारा ने कहीं सूर्योदय के समय निकलने वाली लालिमा को, कहीं हिमालय, मेघ, पशु-पक्षी, लता, सरिता आदि के सौन्दर्य को, तो कहीं खेत और खलिहानों, वनों और उद्धयानों, नदियों और तगाडो को तो कहीं फल-फूलयुक्त वनस्पतियों, चौकड़ी भरते हिरण, वराह, नृत्य करते मयूरों, आकाश में उड़ते हंस, बक आदि का ऐसा सजीव चित्रित किया है; मानो यह प्रकृति के रूप में साक्षात दृष्टिगोचर हो रहे हों।[1]

पृथ्वी और स्वर्ग लोक के अखिल सौन्दर्य, लावण्य एवं रमणीयता को यदि एक ही नाम से व्यक्त करना हो तो केवल कला की अथाह अनुभूति का प्रमाणिक नाम 'ऋतूसंघाराम' कहने से ही सब स्पष्ट हो जाता है। यह महाकवि की प्रथम रचना है। जिसमें प्रकृति-चित्रण के अनेकानेक चित्र अनायास ही परिलक्षित होते हैं एक श्लोक में कवि ने कहा है--

"विपांडूरं कीटरजस्त्रिन्नावितमं भुजंग्वाद्रकगतिप्रसपिर्तम" ।

अर्थात जब बरसात का पानी घरों के दीवारों से प्रथम बार टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें बनाता हुआ पीले-पीले के सूखे पत्तों को हटाता हुआ ऐसा प्रतीत होता है, मानो काला भुजंग वन में विचरण कर रहा हो।

'मेघदूत' में भी प्रकृति के अनुपम वर्णन की छटा हमें बहुत ही प्रभावित करती है, कोई यक्ष जब पहाड़ी ढलान पर मेघ को देखता है तो वह यह मेघ से अत्यंत प्रभावित हो जाता है और उसी समय वह यक्ष कह उठता है-

"धूमो ज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः"।

इस प्रकार धुँआ, अग्नि, जल और वायु के समन्वित रूप मेघ का ऐसा आकार कालिदास जी चित्रित करते हैं, मानो आकाश में मेघ स्वयं ही पर्वतशिखर- जैसा सजीव हो उठता है, न केवल मेघ अपितु मानचित्र से हिमालय की तराई में बसी अलका तक के वर्णन में कालिदास ने प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों का इतना हृदयग्राही वर्णन किया है कि पाठक आत्ममुग्ध, मंत्रमुग्ध हो उठता है।

हम यदि महाकवि कालिदास के 'कुमारसंभव' को देखें-पढ़ें तो उसने भी प्रकृति-चित्रण के ऐसे रमणीय चित्र विद्यमान हैं, जो हमे सहज ही आकृष्ट कर लेते हैं। प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में – "अस्युत्तरस्याँ दिशि देवतात्मा" (1/1) इस श्लोक में हिमालय का कालिदास ने ऐसा विशद चित्रण किया है, मनो वह प्रकृति को मापने का एक अति विशाल शुभ्रदंड हो। 'कुमारसंभव' में शिव के महिमामय स्वरूप का दर्शन भी प्रकृति-चित्रण को परिलक्षित करता है- चर्म पर बैठे समाधिस्थ शिव का जटा-जूट सर्पों से बंधा है, अपने कुछ-कुछ खुले नैनों से शारीर के भीतर चलने वाले सब पवनों को रोककर शिव इस प्रकार अचल बैठे हैं, जैसे ना बरसने वाला श्याम जलधर (बादल) हो, बिना लहरों वाला निश्चल गंभीर जलाशय हो या अचल पवन में विद्यमान दीपशिखा वाला दीपक हो।

यदि 'रघुवंशम्' को ही ले तो इसमें महाकवि ने प्रकृतिक छटारूपी मंदाकिनी को इस प्रकार प्रवाहित किया है, मानो संसार के समस्त रसिक जन उसमें गोता लगाते लगाते थक गए हों, भूल गए हों। 'रघुवंशम्' के द्वितीय सर्ग श्लोक- "पुरस्कृता वत्मरनी" में राजा दिलीप और धर्मपत्नी सुदक्षिणा के बीच नंदिनी गाय इस प्रकार से जो चित्रित होती है, मानो दिन और रात के मध्य संध्याकालीन लालिमा हो। ऐसा चित्र कालिदास जी उपस्थित कर सकते हैं। अन्य कवियों के लिए सर्वथा दुर्लभ हो और अकल्पनीय ही है।

यदि हम 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' को लें तो उसमें भी प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा अद्भुत और मर्मस्पर्शी वर्णन है कि पाठक उसमें अभिभूत-सा हो जाता है। अभीज्ञान की नायिका अप्रतिम सुंदरी शकुंतला प्रकृति के साक्षात पुत्री परिलक्षित होती है। तपोवन के मृगों, पशु-पक्षिओं, तथा लता-पादपों के प्रति उसका हृदय बांधव-स्नेह से आप्लावित है। तपोवन की पावन प्रकृति की गोद में पली निसर्ग कन्या शकुंतला जिस समय आश्रम-तरुओं को सींचती हुई हमारे सम्मुख आती है, उस समय आश्रम के वृक्षों के प्रति शकुंतला का स्नेह ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे उसके सहोदर हों। शकुंतला के विदाई के समय लताओं के पीले-पीले पत्ते इस प्रकार आभाहिन दृष्टिगोचर होते हैं, हिंदी को मानो वे स्वयं अश्रुपात कर रहे हो।

ऐसा ही चित्र 'विक्रमोर्वशीयम्' के प्रथम अंक में भी है- "अविर्भुते शशिनी तमसा मुच्यमानेव रात्रिः:"। यहाँ चंद्रमा उदित हो रहा है और रात्रि अंधकार के परदे से निकलती जाती है तथा धुंए का आवरण क्रमशः अदृश्य होता चला जा रहा है, कगारों के गिरने से प्रकृतिक छटा की अभिव्यक्ति को चित्रित करता है, यह भी अन्यत्र दुर्लभ है।

महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों में प्राकृतिक दृश्यों को ऐसा चित्रांकित किया है, जिसका सौंदर्य देखते ही बनता है। कालिदास की सौंदर्य-दृष्टि भी भारतीय संस्कृति के मूल्यों और आदर्शों के अनुरूप पवित्र और उदार है। तपस्या से अर्जित सौंदर्य को ही महाकवि कालिदास सफल मानते हैं। महाकवि के साहित्य का सौंदर्य और उनकी सौंदर्य-दृष्टि अनुपम है, अतुलनीय है, जिसका अनुकीर्तन शताब्दियों से हो रहा है और सदैव-सदैव होता भी रहेगा।[2]

एक महान सांस्कृतिक विरासत पर कालिदास के समृद्ध एवं उज्जवल व्यक्तित्व की छाप है और उन्होंने अपनी रचनाओं में मोक्ष, व्यवस्था और प्रेम के आदर्शों को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने व्यक्ति को संसार के दु:ख-दर्द और संघर्षों से अवगत कराने के लिए, प्रेम-वासना, इच्छा-आकांक्षा, आशा-स्वप्न, सफलता विफलता आदि को अभिव्यक्ति दी है। भारत ने जीवन को अपनी समग्रता में देखा है और उसमें किसी भी विखण्डन का विरोध किया है।

कवि ने उन मानसिक द्वन्द्वों का वर्णन किया है जो आत्मा को विभक्त करते हैं और इस तरह उन्होंने इसे समग्रता में देखने में हमारी सहायता की है।

कालिदास की रचनाओं में हमारे लिए सौंदर्य के क्षण, साहसिक घटनाएं, त्याग के दृश्य और मानव मन की नित-नित बदलती मनः स्थितियों के रूप संरक्षित हैं। उनकी कृतियां मानव प्रारब्ध के वर्णनातीत चित्रण के लिए सदैव पढ़ी जाती रहेंगी क्योंकि कोई महान कवि ही ऐसी प्रस्तुतियां दे सकता है। उनकी अनेक पंक्तियां संस्कृत में सूक्तियां बन गई हैं। उनकी मान्यता है कि हिमालय क्षेत्र में विकसित संस्कृति विश्व की संस्कृतियों की मापदण्ड हो सकती है। यह संस्कृति मूलतः आध्यात्मिक है। हम सभी सामान्यतः समय-चक्र में कैद हैं और इसीलिए हम अपने अस्तित्व की संकीर्ण सीमाओं में घिरे हैं। अतः हमारा उद्देश्य अपने मोहजालों से मुक्त होकर चेतना के उस सत्य

को पाने का होना चाहिए जो देश-काल से परे है जो अजन्मा, चरम और कालातीत है। हम इसका चिंतन नहीं कर सकते, इसे वर्गों, आकारों और शब्दों में विभाजित नहीं कर सकते। इस चरम सत्य की अनुभूति का ज्ञान ही मानव का उद्देश्य है। रघुवंश के इन शब्दों को देखिए - 'ब्रह्माभूयम् गतिम् अजागम्।' ज्ञानीपुरुष कालातीत परम सत्य के जीवन को प्राप्त होते हैं।

वह जो चरम सत्य है सभी अज्ञान से परे है और वह आत्मा और पदार्थ के विभाजन से ऊपर है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है। वह अपने को तीन रूपों में व्यक्त करता है (त्रिमूर्ति) ब्रह्मा, विष्णु और शिव – कर्त्ता, पालक तथा संहारक। ये देव समाज पद वाले हैं आम जीवन में कालिदास शिवतंत्र के उपासक हैं। तीनों नाटकों – अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र – की आरम्भिक प्रार्थनाओं से प्रकट होता है कि कालिदास शिव-उपासक थे। देखिए रघुवंश के आरम्भिक श्लोक में :

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ।[3]

यद्यपि कालिदास परमात्मा के शिव रूप के उपासक हैं तथापि उनका दृष्टिकोण किसी भी प्रकार संकीर्ण नहीं है। परम्परागत हिन्दू धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार है। दूसरों के विश्वासों को उन्होंने सम्मान की दृष्टि से देखा। कालिदास की सभी धर्मों के प्रति सहानुभूति है और वे दुराग्रह और धर्मान्धता से मुक्त हैं। कोई भी व्यक्ति वह मार्ग चुन सकता है जो अच्छा लगता है क्योंकि अन्ततः ईश्वर के विभिन्न रूप एक ही ईश्वर के विभिन्न रूप हैं जो सभी रूपों में निराकार है।

कालिदास पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। यह जीवन में पूर्णता के मार्ग की एक अवस्था है। जैसे हमारा वर्तमान जीवन पूर्व कर्मों का फल है वैसे ही हम इस जन्म में प्रयासों से अपना भविष्य सुधार सकते हैं। विश्व पर सदाचार का शासन है। विजय अन्ततः अच्छाई की होगी। यदि कालिदास की रचनाएं दुखान्त नहीं हैं तो उसका कारण यह कि वे सामंजस्य और शालीनता के अन्तिम सत्य को स्वीकारते हैं। इस मान्यता के अन्तर्गत वे अधिकांश स्त्री-पुरुषों के दुःख-दर्दों के प्रति हमारी सहानुभूति को मोड़ देते हैं।

कालिदास की रचनाओं से इस गलत धारणा का निराकरण हो जाता है कि हिन्दू मस्तिष्क ने ज्ञान-ध्यान पर अधिक ध्यान दिया और सांसारिक दुःख-दर्दों की उन्होंने अवहेलना की। कालिदास के अनुभव का क्षेत्र व्यापक था। उन्होंने जीवन, लोक, चित्रों और फूलों में समान आनन्द लिया। उन्होंने मानव को सृष्टि (ब्रह्माण्ड) और धर्म की शक्तियों से अलग करके नहीं देखा। उन्हें मानव के सभी प्रकार के दुःखों, आकांक्षाओं, क्षणिक खुशियों और अन्तहीन आशाओं का ज्ञान था।

वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – मानव जीवन के चार पुरुषार्थों में सामंजस्य के पोषक थे। अर्थ पर, जिसमें राजनीति और कला भी सम्मिलित है धर्म का शासन रहना चाहिए। साध्य और साधन में परस्पर सह-संबंध है। जीवन वैध (मान्य) संबंधों से ही जीने योग्य रहता है। इन संबंधों को स्वच्छ और उज्जवल बनाना ही कवि का उद्देश्य था।

इतिहास प्राकृतिक तथ्य न होकर नैतिक सत्य है। यह काल-क्रम का लेखा-जोखा मात्र नहीं है। इसका सार अध्यात्म में निहित है जो आगे की पीढ़ियों को ज्ञान प्रदान करता है। इतिहासकारों को अज्ञान को भेद कर उस आन्तरिक नैतिक गतिशीलता को आत्मसात करना चाहिए। इतिहास मानव की नैतिक इच्छा का फल है जिसकी अभिव्यक्तियां स्वतंत्रता और सृजन हैं।

रधुवंश के राजा जन्म से ही निष्कलंक थे। धरती से लेकर समुद्र तक (आसमुद्रक्षितिसानाम्) इनका व्यापक क्षेत्र में शासन था। इन्होंने धन का संग्रह दान के लिए किया, सत्य के लिए चुने हुए शब्द कहे, विजय की आकांक्षा यश के लिए की और गृहस्थ जीवन पुत्रेष्णा के लिए रखा। बचपन में शिक्षा, युवावस्था में जीवन के सुखभोग, वृद्धावस्था में आध्यात्मिक जीवन और अन्त में योग या ध्यान द्वारा शरीर का त्याग किया।[3]

राजाओं ने राजस्व की वसूली जन-कल्याण के लिए की, 'प्रजानाम् एवं भूत्यार्थम्' जैसे सूर्य जल लेता है और उसे सहस्रगुणा करके लौटा देता है। राजाओं का लक्ष्य धर्म और न्याय होना चाहिए। राजा ही प्रजा का सच्चा पिता है, वह उन्हें शिक्षा देता है, उनकी रक्षा करता है और उन्हें जीविका प्रदान करता है जबकि उनके माता-पिता केवल उनके भौतिक जन्म के हेतु हैं। राजा अज के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति यही मानता था कि राजा उनका व्यक्तिगत मित्र है।

शाकुन्तलं में तपस्वी राजा से कहता है : 'आपके शस्त्र त्रस्त और पीड़ितों की रक्षा के लिए हैं न कि निर्दोषों पर प्रहार के लिए।' 'आर्त त्राणाय वाह शस्त्रम् न प्रहारतुम् अनगसि।' दुष्यन्त एवं शकुन्तला का पुत्र भरत, जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है,

सर्वदमन भी कहलाता है – यह केवल इसलिए नहीं कि उसने केवल भयानक वन्य पशुओं पर विजयी पायी अपितु उसमें आत्मसंयम भी था। राजा के लिए आत्मसंयम भी अनिवार्य है।

रघुवंश में अग्निवर्ण दुराचारी हो जाता है। उसके अन्तःपुर में इतनी अधिक नारियां हैं कि वह उनका सही नाम तक नहीं जान पाता। उसे क्षय हो जाता है और उस अवस्था में भी भोग का आनन्द नहीं छोड़ पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। शालीन मानव-जीवन के लिए संयम अनिवार्य है। कालिदास कहते है : 'हे कल्याणी, खान से निकलने के उपरांत भी कोई भी रत्न स्वर्ण में नहीं जड़ा जाता, जब तक उसे तराशा नहीं जाता।'

यद्यपि कालिदास की कृतियों में तप को भव्यता प्रदान की गई है और साधु और तपस्वियों को पूजनीय रूप में प्रस्तुत किया गया है, तथापि कहीं भी भिक्षापात्र की सराहना नहीं की गई।

धर्म के नियम जड़ एवं अपरिवर्तनीय नहीं हैं। परम्परा को अपनी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान से सही अर्थ दिया जाना चाहिए। परम्परा और व्यक्तिगत अनुभव एक-दूसरे के पूरक हैं। जहां हमें एक ओर अतीत विरासत में मिला है वहीं हम दूसरी ओर भविष्य के न्यासधारी (ट्रस्टी) हैं। अपने अन्तिम विश्लेषण में प्रत्येक को सही आचरण के लिए अपने अन्तःकरण में झांकना चाहिए। भगवतगीता के आरम्भिक अध्याय में जब अर्जुन क्षत्रिय होने के नाते समाज द्वारा आरोपित युद्ध करने के अपने दायित्व से मना करते हैं और जब सुकरात कहते हैं, 'एथेंसवासियों ! मैं ईश्वर की आज्ञा का पालन करूंगा, तुम्हारी आज्ञा का नहीं।' तो वे ऐसा अपनी अर्न्तात्मा के निर्देश पर कहते हैं न कि किसी बंधे-बंधाए नियमों के अनुपालन के कारण। आरम्भिक वैदिक साहित्य में जड़-चेतन की एकरूपता का निरूपण है और अनेक वैदिक देवी-देवता प्रकृति के प्रमुख पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आत्मज्ञान की खोज में प्रकृति की शरण में जाने, हिमश्रृंगों पर जाने या तपोवन में जाने का शिकार बहुत प्राचीन काल से हमारे यहां विद्यमान रहा है। मानव के रूप में हमारी जड़े प्रकृति में हैं और हम नाना रुपों में इसे जीवन में देखते हैं। रात और दिन, ऋतु-परिवर्तन – ये सब मानव-मन के परिवर्तन, विविधता और चंचलता के प्रतीक हैं। कालिदास के लिए प्रकृति यन्त्रवत और निर्जीव नहीं है। इसमें एक संगीत है। कालिदास के पात्र पेड़-पौधों, पर्वतों तथा नदियों के प्रति संवेदनशील हैं और पशुओं के प्रति उनमें भ्रात भावना है। हमें उनकी कृतियों में खिले हुए फूल, उड़ते पक्षी और उछलते-कूदते पशुओं के वर्मन दिखाई देते हैं। रघुवंश में हमें गाय के प्रेम का अनुपम वर्णन मिलता है। ऋतुसंहार में षट ऋतुओं का हृदयस्पर्शी विवरण है। ये विवरण केवल कालिदास के प्राकृतिक-सौन्दर्य के प्रति उनकी दृष्टि को नहीं अपितु मानव-मन के विविध रूपों और आकांक्षाओं की समझ को भी प्रकट करते हैं। कालिदास के लिए नदियों, पर्वतों, वन-वृक्षों में चेतन व्यक्तित्व है जैसा कि पशुओं और देवों में है।[4]

शाकुन्तला प्रकृति की कन्या है। जब उसे उसकी अमानुषी मां मेनका ने त्याग दिया तो आकाशगामी पक्षियों ने उसे उठाया और तब तक उसका पालन-पोषण किया जब तक कि कण्ठ ऋषि आश्रम में उसे नहीं ले गए। शकुन्तला ने पौधों को सींचा, उन्हें अपने साथ-साथ बढ़ते देखा और जब उनके ऊपर फल-फूल आए तो ऐसे अवसरों को उसने उत्सवों की भांति मनाया। शाकुन्तला के विवाह के अवसर पर वृक्षों ने उपहार दिए, वनदेवियों ने पुष्प-वर्षा की, कोयलों ने प्रसन्नता के गीत गाए। शकुंतला की विदाई के समय आश्रम दुःख से भर उठा। मृगों के मुख से चारा छूट कर गिर पड़ा, मयूरों का नृत्य रुक गया और लताओं ने अपने पत्रों के रूप में अश्रु गिराए।

सीता के परित्याग के समय मयूरों ने अपना नृत्य एकदम बन्द कर दिया, वृक्षों ने अपने पुष्प झाड़ दिए और मृगियों ने आधे चबाए हुए दूर्वादलों को मुंह से गिरा दिया।

कालिदास कोई विषय चुनते हैं और आँख में उसका एक सजीव चित्र उतार लेते हैं। मानस-चित्रों की रचना में वे बेजोड़ हैं। कालिदास का प्रकृति का ज्ञान यथार्थ ही नहीं था अपितु सहानुभूति भी था। उनकी दृष्टि कल्पना से संयुक्त है। कोई भी व्यक्ति तब तक पूर्णतः महिमामण्डित नहीं हो सकता जब तक कि वह मानव जीवन से इतर जीवन की महिमा और मूल्यों को नहीं जानता। हमें जीवन के समग्र रूपों के प्रति संवेदना विकसित करनी चाहिए। सृष्टि केवल मनुष्य के लिए नहीं रची गई है।[5]

पुरुष और नारी के प्रेम ने कालिदास को आकर्षित किया और प्रेम के विविध रूपों के चित्रण में उन्होंने अपनी समृद्ध कल्पना का खुलकर उपयोग किया है। इसमें उनकी कोई सीमाएं नहीं हैं। उनकी नारियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक आकर्षण है क्योंकि उनमें कालातीत और सार्वभौम गुण हैं जबकि पुरुष पात्र संवेदना शून्य और अस्थिर बुद्धि हैं। उनकी संवेदना सतही है जबकि नारी का दुःख-दर्द अन्तरतम का है।

पुरुष में स्पर्धा की भावना और स्वाभिमान उसके कार्यालय, कारखाने या रणक्षेत्र में उपयोगी हो सकते हैं पर उनकी तुलना नारी के सुसंस्कार, सौन्दर्य और शालीनता के गुणों से नहीं हो सकती। अपने व्यवस्था और सामंजस्य के प्रेम के कारण नारी परम्परा (संस्कृति) को जीवित रखती है।

जब कालिदास नारी के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तो वे शास्त्रीय शैली को अपनाते हैं और ऐसा करते समय वे अपने विवरणों के वासनाजन्य होने या अतिविस्तृत हो जाने का खतरा मोल लेते हैं। मेघदूत में 'मेघ' को 'यक्ष' अपनी पत्नी का विवरण (हुलिया) इस प्रकार देता है :

'नारियों में वह ऐसी है मानो विधाता ने उसका रचना सर्वप्रथम की है, पतली और गोरी है, दांत पतले और सुन्दर हैं। नीचे के ओष्ठ पके बिम्ब फल (कुंदरू) की भांति लाल है। कमर पतली है। आँखें उसकी चकित हिरणी जैसी हैं। नाभि गहरी है तथा चाल उसकी नितम्बभार से मन्द और स्तनभार से आगे की ओर झुकी हुई है।'

कालिदास द्वारा प्रस्तुत की गई नारियों में हमें अनेक रोचक प्रकार दिखाई देते हैं। उनमें से अनेक को समाज के परम्परागत बहानों और सफाई की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वन्द्व और तनावों को सामंजस्य की आवश्यकता थी। पुरुष संदेहमुक्त अनुभव करते थे और वे पूर्ण सुरक्षित थे। बहुविवाह उनके लिए आम बात थी, परन्तु कालिदास की नारियां कल्पनाशील और चतुर हैं अतः वे संदेह और अनिश्चय के घेरे में आ जाती हैं। वे सामान्यतः अस्थिर नहीं हैं परन्तु वे विश्वसनीय, निष्ठावान तथा प्रेममय हैं।

प्रेम के लिए झेली गई कठिनाइयां और यातनाएं प्रेम को और गहन बनाती हैं। मेघदूत में अजविलाप और रतिविलाप में वियोग की करुणामय मार्मिक अभिव्यक्ति है। प्रेम का संयोग रूप विक्रमोर्वशीय में है।[6]

मालविकाग्निमित्र में रानी को धरिणी कहा गया है क्योंकि वह सब कुछ सहती है। उसमें गरिमा और सहिष्णुता है। इरावती कामुक, अविवेकी, शंकालु, अतृप्त और मनमानी करने वाली है। जब राजा ने उसे छोड़कर मालविका को अपनाया तो वह कठोर शब्दों में शिकायत करती है और कटु शब्दों में राजा को फटकारती है।

मालविका के प्रति अग्निमित्र का प्रेम इन्द्रिपरक है। राजा दासी की सुन्दरता और लावण्य पर मोहित है। विक्रमोर्वशीय में पात्रों में दैवी और मानवीय गुणों का मिश्रण है। उर्वशी का चरित्र सामान्य जीवन से हटकर है। उसमें इतनी शक्ति है कि अदृश्य रूप से वह अपने प्रेमी को देख सकती है तथा उसकी बातें सुन सकती है। उसमें मातृप्रेम नहीं है क्योंकि वह अपने पति को खोने के स्थान पर अपने बच्चे का परित्याग कर देती है। उसका प्रेम स्वार्थजन्य है।

पुरुरवा भावविह्वल होकर प्रेम के गीत गाता है जिसका भावार्थ यह है कि विश्व की सत्ता उतनी आनन्ददायक नहीं जितना प्रेम आनन्ददायक है। विफल प्रेमी के लिए संसार दुःख और निराशा से भरा है और सफल प्रेमी के लिए वह सुख और आनन्द से भरा है। इस नाटक में हम प्रेम को फलीभूत होते देखते हैं। इसमें भूमि और आकाश एक होते हैं। भौतिक आकर्षण पर आधारित वासना नैतिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक ज्ञान में परिवर्तित होती है।

निष्कर्ष

कालिदास अपनी विषय-वस्तु देश की सांस्कृतिक विरासत से लेते हैं और उसे वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के अनुरूप ढाल देते हैं। उदाहरणार्थ, अभिज्ञान शाकुन्तल की कथा में शकुन्तला चतुर, सांसारिक युवा नारी है और दुष्यन्त स्वार्थी प्रेमी है। इसमें कवि तपोवन की कन्या में प्रेमभावना के प्रथम प्रस्फुटन से लेकर वियोग, कुण्ठा आदि की अवस्थाओं में से होकर उसे उसकी समग्रता तक दिखाना चाहता है। उन्हीं के शब्दों में नाटक में जीवन की विविधता होनी चाहिए और उसमें विभिन्न रुचियों के व्यक्तियों के लिए सौंदर्य और माधुर्य होना चाहिए।[7]

त्रैगुण्योद्भवम् अत्र लोक-चरितम् नानृतम् दृश्यते।

नाट्यम् भिन्न-रुचेर जनस्य बहुधापि एकम् समाराधनम्।।

कालिदास के जीवन के बारे में हमें विशेष जानकारी नहीं है। उनके नाम के बारे में अनेक किवदन्तियां प्रचलित हैं जिनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। उनकी कृतियों से यह विदित होता है कि वे ऐसे युग में रहे जिसमें वैभव और सुख-सुविधाएं थीं। संगीत तथा नृत्य और चित्र-कला से उन्हें विशेष प्रेम था। तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान, विधि और दर्शन-तंत्र तथा संस्कारों का उन्हें विशेष ज्ञान था।

उन्होंने भारत की व्यापक यात्राएं कीं और वे हिमालय से कन्याकुमारी तक देश की भौगोलिक स्थिति से पूर्णतः परिचित प्रतीत होते हैं। हिमालय के अनेक चित्रांकन जैसे विवरण और केसर की क्यारियों के चित्रण (जो कश्मीर में पैदा होती है) ऐसे हैं जैसे उनसे उनका बहुत निकट का परिचय है।

जो बात यह महान कलाकार अपनी लेखिनी के स्पर्श मात्र से कह जाता है, अन्य अपने विशद वर्णन के उपरांत भी नहीं कह पाते। कम शब्दों में अधिक भाव प्रकट कर देने और कथन की स्वाभाविकता के लिए कालिदास प्रसिद्ध हैं। उनकी उक्तियों में ध्वनि और अर्थ का तादात्मय मिलता है। उनके शब्द-चित्र सौन्दर्यमय और सर्वांगीण सम्पूर्ण हैं, जैसे – एक पूर्ण गतिमान राजसी रथ (विक्रमोर्वशीय, 1.4), दौड़ते हुए मृग-शावक (अभिज्ञान-शाकुन्तल, 1.7), उर्वशी का फूट-फूटकर आंसू बहाना (विक्रमोर्वशीय, छन्द 15), चलायमान कल्पवृक्ष की भांति अन्तरिक्ष में नारद का प्रकट होना (विक्रमोर्वशीय, छन्द 19)। उपमा और रूपकों के प्रयोग में वे सर्वोपरि हैं।

सरसिजमनुविद्धं शैवालेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमिधकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

‘कमल यद्यपि शिवाल में लिपटा है, फिर भी सुन्दर है। चन्द्रमा का कलंक, यद्यपि काला है, किन्तु उसकी सुन्दरता बढ़ाता है। ये जो सुकुमार कन्या है, इसने यद्यपि वल्कल-वस्त्र धारण किए हुए हैं तथापि वह और सुन्दर दिखाई दे रही है। क्योंकि सुन्दर रूपों को क्या सुशोभित नहीं कर सकता ?’

कालिदास की रचनाओं में सीधी उपदेशात्मक शैली नहीं है अपितु प्रीतमा पत्नी के विनम्र निवेदन सा मनुहार है। मम्मट कहते हैं : ‘कान्तासम्मिततयोपदेशायुजे।’ उच्च आदर्शों के कलात्मक प्रस्तुतीकरण से कलाकार हमें उन्हें अपनाने को विवश करता है। हमारे समक्ष जो पात्र आते हैं हम उन्हीं के अनुरूप जीवन में आचरण करने लगते हैं और इससे हमें व्यापक रूप में मानवता को समझने में सहायता मिलती है।[8]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. रामजी उपाध्याय , संस्कृत साहित्य का गंभीर इतिहास 20 जुलाई 2014) ।
2. “ निर्गतसु न वै कस्य कालिदासस्य सूक्तिसु। प्रीतिर्मधुर संद्रासु ... । ” - बाणभट्ट , हर्षचरितम।
3. उमाशंकर शर्मा ‘ ऋषि ’, संस्कृत साहित्य का इतिहास , चैखम्भा भारती अकादमी , पृ। 202
4. अच्युतानंद घिल्डियाल और गोदावरी घिल्डियाल - कालीदासा और उनका मानव साहित्य 2, 2014 जुलाई 2014
5. उमाशंकर शर्मा ‘ ऋषि ’, संस्कृत साहित्य का इतिहास , चैखम्भा भारती अकादमी , पृष्ठ 19
6. एबी कीथ , संस्कृत साहित्य का इतिहास , चैखम्भा भारती अकादमी , पृष्ठ 125
7. “ चित्तं व्युपनोति यः क्षिप्रं शुष्काण्डनमिवनलः स प्रसादाः स्मस्तेषु रेसु रंचासु वा। ”
8. “ उपमा कालिदासस्य ...